सागर-मुद्रा

'अज्ञेय'

भूमिका

जो कवि नया नहीं है, उस के नये कविता-संग्रह की भूमिका इस के अलावा क्या हो सकती है कि 'यह अमुक कवि की नयी रचनाओं का संग्रह है'? और इस से कुछ अधिक ही इस संग्रह के उप शीर्षक में कह दिया है, जहाँ कि उस अवधि का निर्देश भी कर दिया गया है जिस में ये रची गयीं।

जहाँ तक सागर-मुद्रा की उस नाम की कविता, या उस के साथ की अन्य कविताओं की बात है, मुझे इस में अधिक कुछ नहीं कहना है। किन्तु उत्तर खंड, देलोस से एक नाव, कुछ स्पष्टीकरण माँगता है; वही इस भूमिका का हेतु है।

मैं ग्रीक भाषा नहीं जानता। उस भाषा का कृति-काव्य मैंने काफ़ी पढ़ा है, पर अंग्रेज़ी अनुवाद में। यूरोपीय साहित्यों का अध्येता होने के नाते कुछ ग्रीक शब्दों में परिचय रहा है; भौतिक विज्ञान पढ़ते-पढ़ते ग्रीक वर्णमाला सीख ली थी; और शब्द-व्युत्पत्ति में हमेशा से रुचि रहने के कारण ग्रीक धातुओं का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया है। इस प्रकार ग्रीक 'पढ़' भी लेता हूँ; फिर भी यह व्याज विनय नहीं है कि मैं ग्रीक भाषा नहीं जानता। तब देलोस से एक नाव की कविताएँ कैसे? क्या उन का अनुवाद अंग्रेज़ी या फ़्रांसीसी से किया गया है? नहीं, इन के अंग्रेज़ी-फ्रेंच अनुवाद मुझे अभी तक नहीं मिले। मेरी अयोग्यता या हठधर्मी ने और जो अनर्थ किया हो, यह दावा मैं कर सकता हूँ कि इन कविताओं की मूल वस्तु ग्रीक छोड़ और किसी यूरोपीय भाषा की देन नहीं है। यह अजूबा कैसे घटित हुआ, यह समझाने के लिए थोड़ा ब्यौरा अपेक्षित है।

ग्रीस कई बार जाना हुआ है। स्वाभाविक है कि प्रत्येक बार स्थलों के

भूमिका

जो कवि नया नहीं है, उस के नये कविता-संग्रह की भूमिका इस के अलावा क्या हो सकती है कि 'यह अमुक कवि की नयी रचनाओं का संग्रह है'? और इस से कुछ अधिक ही इस संग्रह के उप शीर्षक में कह दिया है, जहाँ कि उस अवधि का निर्देश भी कर दिया गया है जिस में ये रची गयीं।

जहाँ तक सागर-मुद्रा की उस नाम की कविता, या उस के साथ नद्द अन्य कविताओं की बात है, मुझे इस से अधिक कुछ नहीं कहना है। किन्तु उत्तर खड, देलोस से एक नाव, कुछ स्पष्टीकरण माँगता है, वही इस भूमिका का हेतु है।

मैं ग्रीक भाषा नहीं जानता। उस भाषा का कृति-काव्य मैंने काफ़ी पढ़ा है, पर अंग्रेज़ी अनुवाद में। यूरोपीय साहित्यों का अध्येता होने के नाते कुछ ग्रीक शब्दों से परिचय रहा है; भौतिक विज्ञान पढ़ते-पढ़ते ग्रीक वर्णमाला सीख ली थी; और शब्द-व्युत्पत्ति में हमेशा से रुचि रहने के कारण ग्रीक धातुओं का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया है। इस प्रकार ग्रीक 'पढ़' भी लेता हूँ; फिर भी यह व्याज विनय नहीं है कि मैं ग्रीक भाषा नहीं जानता। तब देलोस से एक नाव की कविताएँ कैसे? क्या उन का अनुवाद अंग्रेज़ी या फ़्रांसीसी से किया गया है? नहीं, इन के अंग्रेज़ी-फ्रेंच अनुवाद मुझे अभी तक नहीं मिले। मेरी अयोग्यता या हठधर्मी ने और जो अनर्थ किया हो, यह दावा मैं कर सकता हूँ कि इन कविताओं की मूल वस्तु ग्रीक छोड़ और किसी यूरोपीय भाषा की देन नहीं है। यह अजूबा कैसे घटित हुआ, यह समझाने के लिए थोड़ा ब्योरा अपेक्षित है।

ग्रीस कई बार जाना हुआ है। स्वाभाविक है कि प्रत्येक बार स्थलों के

बारे में अज्ञता कुछ कम होती गयी हो; पर ग्रीक प्रतिभा के बारे में अपनी बढ़ती हुई जिज्ञासा ने हर बार यह अनुभव और तीखा करा दिया है कि जो जानना चाहिए, और जो जानना चाहता हूँ, वह मैं कुछ नहीं जानता। पिछली बार गया तो यह भावना और अधिक साल रही थी। एक तो इधर की राजनैतिक उथल-पुथल को समझने के लिए ग्रीस का समकालीन इतिहास पढ़ता रहा था, दूसरे इस बार अनेक ग्रीक नाटकों का मंचायन देखने का अवसर मिला था। 'कुछ और जानने' (और जो जानूँ उसे गहरे में समा जाने देने !) की धुन में, देल्फ़ी गया तो आस-पास के प्रदेश में दूर-दूर तक पैदल घूमता रहा। ऐसी ही एक लम्बी सैर में एक दिन पार्नासस पर्वत की बीहड़ पगडंडियों पर भटक गया। पार्नासस की अधित्यका प्रायः नंगी है, इस लिए दिन ढल रहे होने पर भी जंगल में खोने का डर तो नहीं था; पर जिन्होंने पहाड़ों में भेड़-बकरी की लीकों के सहारे कहीं गाँव-घर तक पहुँचने की कोशिश (या भूल !) की है, वे समझ सकेंगे कि झुटपुटा हो जाने पर मेरी क्या गति हुई होगी !

ख़ैर, घनी रात में एक डगर मिली जिस ने दूर पर एक धीमा प्रकाश दिखा कर आशा जगायी। वह प्रकाश अकेले घर का नहीं, गाँव के एक घर का था। अपने अधकचरे ज्ञान और इस समय तक काफ़ी भ्रमित हो गयी भौगोलिक बुद्धि के सहारे मैंने अनुमान किया था कि यह अराख़ोवा का ऊपरी हिस्सा होगा या उसी के सहारे जीने वाला कोई और छोटा गाँव; इसलिए यह भी आशा थी कि, देर हो गयी होने पर भी, गाँव में आश्रय नहीं तो सहानुभूति और पथ-निर्देश तो मिल ही जाएगा ! पिछले महायुद्ध के दौरान ग्रीस के स्वाधीनता-संग्राम और क्रान्ति में अराख़ोवा के साहसिक छापामारों ने महत्त्व का काम किया था; ऐसे लोगों से जहाँ यह आशंका होती कि अजनबी के प्रति यूनानी का पारम्परिक सन्देह और भी गहरा हो सकता है, वहाँ यह आशा भी कि वे उदार-हृदय होंगे और इस लिए सन्देह पर यूनानी के पारम्परिक आतिथ्य-धर्म को वरीयता देंगे !

मेरा यह अनुमान तो ग़लत नहीं निकला, पर अराख़ोवा का नाम लेने पर गृहस्थ और उस की पत्नी दोनों हँसे; खिड़की से इशारे द्वारा मुझे बता दिया गया कि अराख़ोवा दूर ही नहीं, पहाड़ की एक ढाल के उस पार है !

जो हो, मुझे रात-भर के लिए आश्रय मिल गया; एक लालटेन भी मिल गयी; और शायिका के रूप में जो सँकरा कठौता तख्त मिला उस के साथ के ताक में पुरानी किताबों की तीन पंक्तियाँ सँवरी हुई देख कर मुझे लगा कि मैं वास्तव में भटका नहीं, अनजाने पड़ाव पर ही पहुँचा हूँ। गृहस्थ के भाई धर्म-दीक्षा ले कर किसी विहार में चले गये थे। (यों मुझे लगा कि विहार में जाने का कारण जितना धर्मोन्माद रहा होगा उस से अधिक वहाँ छिप कर रहने की आवश्यकता; पर मेरा यह अनुमान गलत भी हो सकता है और पूछना तो भारी अशिष्टता होती।) मेरे मतलब की बात इतनी थी कि उन की पुस्तकें सँभाल कर रखी गयी हैं और मुझे उपलब्ध हैं!

एक पुरानी, जीर्ण, दोनों ओर से फटी हुई पर चित्र-रंजित पुस्तक के साथ घंटों उलझा रहा। पहला आकर्षण निस्सन्देह चित्रों का था; पर वे कुछ ऐसे कौतूहल को जगाने वाले थे (—मन होता है कि ग्रीक गाथा के तान्तालोस के नाम से बने हुए शब्द का हिन्दीकरण कर के कहूँ, चित्र ऐसे 'तन्तलाने वाले' थे!—) कि प्रसंग पूरा समझने के लिए साथ की ग्रीक कविताएँ या कविता-खंड बार-बार पढ़ता रहा—मानो अबूझ शब्द को दोहराने-तिहराने से उस का अर्थ अवगत हो जायेगा!

रात्रिरेवं व्यरसीत्। पुस्तक से अपने को तोड़ कर एक झपकी सो लिया। उठ कर फिर उसे उलटा-पलटा तो देखा कि अन्त में लातीनी भाषा में टीका भी है; इस से कुछ और सहायता मिली और जो कविताएँ मुझे समझ में आती जान पड़ीं उन का भावार्थ मैंने अपनी कापी में उतार लिया। साथ ही छन्द, ताल आदि के विषय में भी कुछ टीप ले ली जिस के सहारे अनन्तर और काम कर सकूँ।

यही इन अनुवादों का रहस्य, और मेरे दुस्साहस की सफाई है। जो अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं, इन के अलावा कुछ और भी थे, पर जीर्ण पोथी के आरम्भ और अन्त के पन्ने फटे होने के कारण उन की टीका न पा सका, और दुस्साहसी होने पर भी इस में मुझे सकोच हुआ कि उन कविताओं को भी सामने लाऊँ जिन को ठीक समझ सके होने के बारे में स्वयं मुझे सन्देह हो। बल्कि सन्देह नहीं, निश्चय हो कि मैं नहीं समझ पाया! कुछ का कुछ पढ़ जाने पर भी, एक कविता से दूसरी कविता मिल जा सकती है, पर क्या उसे अनुवाद भी कहा जा सकेगा?

अनन्तर मैंने मूल कविताएँ पाने का प्रयत्न किया, जिस से किसी ग्रीक विद्वान् के साथ बैठ कर अपनी उपलब्धियों का परिमार्जन कर सकूँ। पर ये कविताएँ मुझे प्लानूदिस के ग्रीक काव्यकोष में तो नहीं मिलीं; न ह्यार्वर्ड की लायरा ग्रेका (३ खंड) अथवा पैटन द्वारा सम्पादित द ग्रीक ऐन्थालोजी (५ खंड) में ही। इन ग्रन्थों को और ग्रीक चरितकोशों को देखने का एक लाभ यह अवश्य हुआ कि कविताओं के साथ आवश्यक व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ जोड़ दे सकूँ। यों दो कोष-ग्रन्थ देखने से खोज पूरी नहीं हो जाती, यह जानता हूँ। उसे आगे बढ़ाने के लिए फिर पार्नासस की अधित्यका में भटकने का सुयोग देखना रहेगा।

अब यही आशा कर सकता हूँ कि मेरी त्रुटियों के बावजूद देलोस से एक नाव पाठकों को मिलेगी। उस में जो कुछ अच्छा है, वह ग्रीस की मेरी पिछली यात्रा की उपलब्धि है; जो अच्छा नहीं है, वह मेरी 'अल्पविषया मति' की सीमा है। अपोलो ज़ेयस् (ज्यूस) का बेटा और प्रकाश का देवता है, इस नाते उसे 'सूर्यप्रभव' मान कर मैं अपने से बड़े कवि की ओट ले कर कह सकता हूँ :

> क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः
> तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

देलोस से आने वाली नाव देवता के ही काव्यवाद्य का एक-आध भटका स्वर पाठक तक पहुँचा दे, तो मेरी मध्यस्थता सफल होगी।

—'अज्ञेय'

क्रम-सूची

देलोस से एक नाव

और तुम क्यों नहीं हो सागर
जिस के मैं निकटतर
आना चाहता हूँ ?

सागर-मुद्रा

सोया नींद में को, जागा सपने में को

सोया था मैं
नींद में को
एकाएक
सपने में को
गया जाग :
सपना आग का
लपलपाती ग्रसती
हँसती
समाधि की विभोर आग।

फिसलता हुआ
धीरे-धीरे गिरा फिर
मुँते हुए, ठंडे
जागने में को।
आग शान्त, रक्षित,
सँजोयी हुई—
और भी कई आगों के साथ
सोयी हुई।

पहले भी तो
जागा हूं
ऐसे, सपने में को :

जलते हुए, रागाधिरम्भ
अपने में को;
फिगल कर गिरने को
जागने की नींद में को;
आगें सब गुंती हुई, ठंडी,
सोयी हुई,
और भी पुरानी कई आगों के
साथ ही सँजोयी हुई—
खोयी हुई !

मैंने ही पुकारा था

ठीक है
मैंने ही तेरा नाम ले कर पुकारा था
पर मैंने यह कब कहा था
कि यों आ कर
मेरे दिल में जल ?
मेरे हर उद्यम में उघाड़ दे
मेरा छल,
मेरे हर समाधान में
उछाला कर सौ-सौ सवाल
अनुपल ?

नाम : नाम का एक तरह का सहारा था।
मैं थका-हारा था
पर नहीं था किसी का गुलाम।
पर तूने तो आते ही फूँक दिया घर-बार
हिये के भीतर भी जगा दिया नया हाहाकार
ओ मेरे राम !

काल की गदा

काल की गदा
एक दिन
मुझ पर गिरेगी ।

गदा
मुझे नहीं भायेगी :
पर उस के गिरने की नीरव छोटी-सी ध्वनि
क्या काल को सुहायेगी ?

फूल हर बार आते हैं

फूल हर बार आते हैं,
ठीक है, हम अन्ततः नहीं आते ;
पर हर बार
वसन्त के साथ
वहाँ पहाड़ पर हिम गलता है
और यहाँ नदी भरती है
अमराई बौराती है
और कोयलें कूकती हैं
बयार गरमाती है
और वनगन्ध मद के लिए बिसरती है।

हम नहीं आयेंगे,
तो भी, जब हैं,
तब क्यों नहीं गायेंगे
या गाये हुए ही गीत की
कड़ी नहीं दोहरायेंगे ?

धार पर सँतार दो

चलो खोल दो नाव
चुपचाप
जिधर बहती है
बहने दो।

नहीं, मुझे सागर से
कभी डर नहीं लगा।
नहीं, मुझ में आँधियों का
आतंक नहीं जगा।

नाव तो तिर सकती है
मेरे बिना भी;
मैं बिना नाव भी
डूब सकूँगा।
मुझे रहने दो
अगर मैं छोड़ पतवार
निस्सीम पारावार
तकता हूँ;
खोल दो नाव
जिधर बहती है
बहने दो।

यहाँ भी मुझे
अन्धकार के पार
        लहर ले आयी थी;
चूम ली मैंने मिट्टी किनारे की
सुनहली रज
        पलकों को छुआयी थी;
अब—ओठों पर जीभ से सहलाता हूँ
खार उस पानी का
मन को बहलाता हूँ
मधुर होगा मेरा अनजाना भी
अन्त इस कहानी का।

रोको मत
तुम्हीं बयार बन पाल भरो,
तुम्हीं पहुँचे फड़फड़ाओ,
लटों में छन अंग-अंग सिहरो;
और तुम्हीं धार पर सँवार दो चलो,
मुझे सारा सागर
        सहने दो।

खोल दो नाव,
जिधर बहती है
        बहने दो।

बेल-सी वह मेरे भीतर

बेल-सी वह मेरे भीतर उगी है, बढ़ती है।
उस की कलियाँ हैं मेरी आँखें,
कोंपलें मेरी अँगुलियों में अंकुराती हैं;
फूल—अरे, यह दिल में क्या खिलता है!
साँस उस की पंखुड़ियाँ सहलाती है।
बाहें उगी के वलय में बँधी कसमसाती हैं!
बेल-सी वह मेरे भीतर उगी है, बढ़ती है,
जितना मैं चुकता जाता हूँ,
वह मुझे ऐश्वर्य से मढ़ती है!

बालू-घड़ी

तुम
मेरी एक निजी घड़ी
जिस में मैं ओक भर-भर
समय पूरता हूँ
और वह बालू हो कर रीत जाता है।

जिस बालू को मैं फिर बटोरता हूँ।

किस के पैरों की छाप है
इस बालू पर
जिसे ताकते-ताकते
मेरा सारा चेतन जीवन बीत जाता है?

और मैं फिर
अपने को पाने के लिए तुम्हें अगोरता हूँ।

घर छोड़े

हाँ, बहुत दिन हो गये
घर छोड़े।

अच्छा था
मन का अवसन्न रहना
भीतर-भीतर जलना
किसी से न कहना
पर अब बहुत ठुकरा लिये
परायी गलियों के
अनजान रोड़े।

यह नहीं कि अब याद आने लगे
चेहरे किन्हीं ऐसे अपनों के,
या कि बुलाने लगे
मेहमान ऐसे कोई सपनों के।

कभी उभर भी आती हैं
कसकें पुरानी,
यह थोड़े ही कि नैन कभी
पसीजे नहीं ?
सुख जो छूट गये पर छीजे नहीं

सिहरा भी जाते हैं तन को
जब-तब थोड़े-थोड़े।

सोचता हूँ, कैसा हो
अगर इस सहलाती अजनबी
वसन्त बयार के बदले
वही अपना भुनगाता अन्धड फिर
अंग-अग को मरोड़े;
यह दुलराती फुहार नहीं
वह मौसमी थपेडा दुर्निवार
देह को झँझोड़े;
ये नपी-तुली रोजमर्रा
सहूलतें न भी मिलें,
आये दिन संकट मँडराये,
फिर झिले कि न झिले;
पर भोर हो, सूरज निकले, तो ऐसे
जैसे बंजर-बियावान की
पपड़ायी मिट्टी को
नया अकुर फोडे !

नही जानता कब कौन सजोग
ये डगमग भटकते पग
फिर इधर मोडे—या न मोडे ? –
पर हाँ, मानता हूँ कि
जब-तब पहचानता हूँ कि
बहुत दिन हो गये
घर छोडे।

जीवन-मर्म

झरना : झरता पत्ता
हरी डाल से
अटक गया ।

ग्रीष्म की रात

कोयल ने टेरा : कुहू !
कि पपीहे ने पलटा : कहाँ ?
कसैली आँखें : मटमैला सवेरा।

लक्षण

नदी में
मछलियाँ उछलती हैं :
क्षितिज पर उमड़ रहे होंगे
बादलों के साये ।

क्या तुम्हारे चौके में
आटा नहीं उछलता
कि यह प्रवासी
लौट आये ?

कोहरे में भूज

कोहरे में नम, सिहरा
खड़ा, इकहरा
उजला तना
भूज का।

बहुत सालती रहती है क्या
परदेसी की
याद, यक्षिणी ?

काँपती है

पहाड़ नहीं काँपता,
न पेड़, न तराई;
काँपती है ढाल पर के घर से
नीचे झील पर झरी
दिये की लौ की
नन्ही परछाईं ।

सपने में—जागते में

सपने के भीतर
सपने में अपने
सीढ़ियों पर
बैठा हुआ होता हूँ
धूप में।
—देखने को सपने ?

जागते में
जागता भागता हूँ
अँधेरी गुफा में
खोजता हुआ दरार
चौड़ाने को।
झाँकने को पार।
—जागने को ?

प्रेमोपनिषद्

वह जो पंछी
खाता नहीं, ताकता है,
पहरे पर एकटक जागता है—
होगा, होगा जब।
मैं वह पंछी हूँ
जो फल खाता है
क्योंकि फल, डाल, तरु, मूल,
तुम्हीं हो सब।

पर एक
जागता है, ताकता है—
कौन?
मैं हूँ, जागरूक पहरेदार।
पक्षी और डाल, तरु और फूल,
सभी मैं देखता हूँ
तुम्हारा होकर।

मुक्त करे तुम्हें, मौन
वही तो होगा
मेरा प्यार।

छिलके

छिलके के
भीतर छिलके के
भीतर छिलका।
क्रम अविच्छिन्न।

तो क्या ?
यह कैसे है सिद्ध
कि भीतरतम
है, होगा ही,
बाहर से भिन्न ?

मैं अनन्य
एकाकार
जैसे प्यार।

मोंमार्त्र

उधार के समय में
खरीदे हुए प्यार पर
चुरायी हुई मुस्कानें।

चलती-फिरती पपड़ायी सूरतें,
इश्तहारी नंगी मूरतें :
एक में दूसरी
और क्या पहचाने ?

पाठ-भेद

एक जगत् रूपायित प्रत्यक्ष
एक कल्पना सम्भाव्य ।
एक दुनिया सतत मुखर
एक एकान्त नि स्वर ।
एक अविराम गति, उमंग
एक अचल, निस्तरंग ।

दो पाठ
एक ही काव्य ।

अलस

भोर
अगर थोड़ा और अलसाया रहे,
मन पर
छाया रहे
थोड़ी देर और
यह तन्द्रालस चिकना कोहरा;
कली
थोड़ी देर और
डाल पर अटकी रहे,
ओस की बूँद
दूब पर टटकी रहे;
और मेरी चेतना अकेन्द्रित भटकी रहे
इस सपने में जो मैंने गढ़ा है
और फिर अधखुली आँखों से
तुम्हारी मुंदी पलकों पर पढ़ा है
तो—
तो किसी का क्या जाये ?
कुछ नहीं ।
चलो, इस बात पर
अब उठा जाये ।

छातियों के बीच

उस ने वहाँ अपनी नाक गडाते हुए
हुमक कर कहा
और दुहराता रहा—
(दुलार पढ़ा हुआ नही भी था—पर क्या
बात भी पढ़ी हुई नही थी ?)—
'हाँ, यहाँ, तुम्हारी छातियों के बीच
मेरा घर है ! यहाँ ! यहाँ !'
और चहरे से उन्हे धीरे-धीरे सहलाता रहा ।

और उस ने कहा, 'हाँ, हाँ,
ऐसे ही फिर; हाँ, फिर कहो !
हाँ, आओ, मैं यहाँ तुम्हे छिपा लूँगी—
तुम सदा यों ही रहो !'

छातियाँ तब नहीं जानती थी—
जो कि नाक भी तब नही मानती थी—
कि तभी से वह वहाँ घर बनाने लगी
जिस मे फिर वह वन्दी हो कर छटपटाने लगा ।

छातियों के बीच
और कुछ नही, इसी रहस्य का घर है ।
माथा क्यो वहाँ टिका है ?
क्योकि नही तो नाक जाने का डर है !

कन्हाई ने प्यार किया

कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार।
पर उड़ेलते रहे अपना सारा दुलार
उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं—
जो कभी हाथ आया नहीं।
कभी किसी प्रेयसी में उसी को पा लिया होता—
तो दुबारा किसी को प्यार क्यों किया होता ?

कवि ने गीत लिखे नये-नये बार-बार,
पर उसी एक विषय को देता रहा विस्तार
जिसे कभी पूरा पकड़ पाया नहीं—
जो कभी किसी गीत में समाया नहीं।
किसी एक गीत में वह अँट गया दिखता
तो कवि दूसरा गीत ही क्यों लिखता ?

मरण के द्वार पर

ज्योति के
भीतर ज्योति के
भीतर ज्योति।
प्यार है वह—वह सत्
और तत्
तदसि त्वं—एतत्।

२

कहीं
एक है वह
जिस का है
यह।

पर इस से
मेरा क्या नाता
जब कि इस से भी
कुछ नहीं आता-जाता
कि मैं भी
हूँ या नहीं?

स्मर
मृतान्
स्मर
क्रतो
स्मर।
—हाँ; वह
मरण के
द्वार पर।
मगर वहाँ
जाना कहाँ
इस मारग पर
चरण धर ?

नदी का बहना

देर तक देखा हम ने
नदी का बहना ।
पर नही आया हमे
कुछ भी कहना ।

फिर उठे हम, मुड़े चलने को;
तब नैंन मिले,
हुए मानो जलने को;
एक को जो कहना था
दूसरे ने सुन लिया :

'किसी भविष्य मे नही, पिया !
न हो अतीत मे कही,
तुम अनन्त काल तक इसी इसी
वर्त्तमान में रहना ।'

जो औचक कहा गया

मैंने जो नहीं कहा
वह मेरा अपना रहा
रहस्य रहा :
अपनी इस निधि, अपने संयम पर
मैंने बार-बार अभिमान किया।

पर आज हार की तीक्ष्ण धार
है साल रही : मेरा रहस्य
उतना ही रक्षित है
उतना-भर मेरा रहा
कि जितना किसी अरक्षित क्षण में
तुम ने मुझ से कहला लिया !

जो औचक कहा गया, वह बचा रहा,
जो जतन सँजोया, चला गया।
यह क्या मैं तुम से, या जीवन से
या अपने से छला गया ?

आवश्यक

जितना कह देना आवश्यक था
कह दिया गया : कुछ और बताना
और बोलना—अब आवश्यक नहीं रहा।

आवश्यक अब केवल होगा चुप रह जाना
अपने को लेना सँभाल
सम्प्रेषण के अर्पित, निभृत क्षणों में।
अब जो कुछ उच्चारित होगा, कहा जायगा,
सब होगा पल्लवन, प्रस्फुटन
इसी द्विदल अंकुर का।

बीनते हुए बिखरा-निखरा सोना
फल-भरे शरद का
हम क्या कभी सोचते हैं : 'वसन्त आवश्यक था ?'

गाड़ी चल पड़ी

पैर उठा और दवा
धीमी हुई गाड़ी और रुक गयी ।
इंजन घरघराता रहा ।
मैं मुड़ा, एक लम्वी दीठ-भर
मेरी आँखों ने उस की
आँखों को थाहा ।
कुछ कहा नहीं, न कुछ चाहा ।
फिर पैर, हाथ, तन
पहले-से सध आये,
दीठ की खोज चुक गयी ।
और गाड़ी चल पड़ी
मील पर मील पर मील ।
मन थरथराता रहा ।

काल के सवालों का
नहीं है मेरे पास कोई जवाव,
जो उसे—या किसी को—दे सकूँ ।
इतना ही कि ऐसी अतर्कित चुप्पियों में
मिल जाती हैं जव-तव छोटी-छोटी अमरताएँ
जिन में साँस ले सकूँ ।

बिदाई का गीत

यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत
अभी गाना ना।
चाहना जो चाहना
पर उलाहना मन में ओ मीत !
कभी लाना ना।

वह दूर, दूर सुनो, कहीं लहर
लाती है और भी दूर, दूर, दूरतर का स्वर,
उस में, हाँ, मोह नहीं,
पर कहीं विछोह नहीं,
वह गुरुतर सच युगातीत
रे भुलाना ना।

नहीं भोर-सझा
उमगते-निमगते
सूरज, चाँद, तारे,
नहीं वहाँ
उझकते-झिझकते
डगमग किनारे,
वहाँ एक अन्त स्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे;

यही ज्योति-कवच
है हमारा निजी सच,
सार जो हम ने पाया
गढ़ा, चमकाया, लुटाया :
उस की सुप्रीत छाया से बाहर, ओ मीत,
अब जाना ना।
कोई उदास गीत, ओ मीत,
अभी गाना ना।

देर तक हवा में

देर तक हवा में
अलूचों की पंखुरियों को
तिरछी झरते
देखा किया हूँ।
नही जानता कि तब
अतीत मे कि भविष्य मे
कि निरे वर्त्तमान के
क्षण में जिया हूँ।

भले ही उस बीच बहुत-सी
यादो को उमड़ते
आशाओ को मरते
और हाँ, गहरे मे कहीं एक
नयी टीस से अपने को सिहरते
अनजाने पर लगातार
पहचाना किया हूँ।

यों न जानते हुए जीना
क्या सही है ?
पर क्या पूछने की एकमात्र
बात यही है ?

और मैंने यह जो हारने, जीने,
झरने, सिहरने की
बात कही है,
उस सब में क्या सच वही नहीं है
जो नहीं है ?

क्यों

क्यों यह मेरी जिन्दगी
फूटे हुए पीपे से तेल-सी
बूँद-बूँद अनदेखी चुई
काल की मिट्टी में रच गयी ?

क्यों वह तुम्हारी हँसी
घास की पत्ती पर टँकी ओस-सी
चमकने-चमकने को हुई
कि अनुभव के ताप में उड़ गयी ?

क्यों, जब प्यार नहीं रहा
तो याद मन मे फँसी रह गयी ?
ज्योनार हो चुकी, मेहमान चले गये,
बस पकवानों की गन्ध सारे घर मे बसी रह गयी···

क्यो यह मेरा सवाल अपनी कोंच से
मुझे तड़पाता है रात-भर, रात-भर,
जैसे टाँड़ में अखबारों की गड्डी मे छिपा चूहा
करता रहे कुतर-कुतर, खुसर-फुसर ?

फूल की स्मरण-प्रतिमा

यह देने का अहंकार
छोड़ो।
कहीं है प्यार की पहचान
तो उसे यों कहो :

'मधुर, यह देखो
फूल। इसे तोड़ो;
घुमा-फिरा कर देखो,
फिर हाथ से गिर जाने दो :
हवा पर तिर जाने दो—
(हुआ करे सुनहली) धूल।'

फूल की स्मरण-प्रतिमा ही बचती है।
तुम नहीं। न तुम्हारा दान।

दोनों सच हैं

वे सब बातें
झूठ भी हो सकती थीं।
लेकिन यों तो
सच भी हो सकती थीं।
बात यह है कि अनुभूतियाँ
बातें नहीं हैं
और असल में विचार भी
शब्दों के फन्दे में आते नहीं हैं।
अपनी-अपनी जगह
दोनों सच हैं
या होंगे;
पर सच क्या है, यह सवाल
हम भरसक उठाते नहीं हैं
और टकरा जायें तो
पतियाते नहीं हैं।

याद

याद : सिहरन : उड़ती सारसों की जोड़ी।
याद : उमस : एकाएक घिरे बादल में
कौंध जगमगा गयी।
सारसों की ओट बादल,
बादल में सारसों की जोड़ी ओझल,
याद की ओट याद की ओट याद।
केवल नभ की गहराई बढ़ गयी थोड़ी।
कैसे कहूँ कि किस की याद आयी?
चाहे तड़पा गयी?

मन दुम्मट-सा

मन
दुम्मट-सा गिरता है
सूने में अँधेरे में;
न जाने कितनी गहरी है
भीत
मेरी उदासी की।
ओ मीत!
गिरता है गिरता है
कहीं नहीं थिरता है धीरज;
नीचे ही सही
राह भी होती
उतरने की, तो
गिरता, डूब जाता,
फिर शायद उतराता···
पर नहीं; मन
गिरता है और गिरता ही जाता है,
न थाह पाता है न फिरता है,
बस, सहमता ताकता है
कि मानो गर्त का अँधेरा ही बढ कर लोक लेता है।
देखो! कहीं वही तो नहीं
अब स्वयं मेरे भीतर से झांकता है?
उफ्, गिरता है, गिरता है
मन···

तुम क्या जानो

तुम क्या जानो
कितनी लम्बी होती है रात
अकेली
सिसकी की !

नदी का पुल

ऐसा क्यों हो
कि मेरे नीचे सदा खाई हो
जिस में मैं जहाँ भी पैर टेकना चाहूँ
भँवर उठें, क्रुद्ध;
कि मैं किनारों को मिलाऊँ
पर जिन के *आवागमन* के लिए राह बनाऊँ
उन के द्वारा निरन्तर
दोनों ओर से रौंदा जाऊँ ?
जब कि दोनों को अलगाने वाली
नदी
निरन्तर बहती जाये, अनवरुद्ध ?

नदी का पुल : २

इस लिए
कि मैं कोई नहीं हूँ
मैं उपकरण हूँ
जिन के काम आया हूँ
उन्हीं का बनाया हूँ
नदी से ही उन का
सीधा नाता है।
वही उन की सच्चाई है
जो मेरे लिए खाई है।

रह गये

सब
अपनी-अपनी
कह गये :
हम
रह गये।

ज़बान है
पर कहाँ है बोल
जो तह को पा सके ?
आवाज़ है
पर कहाँ है बल
जो सही जगह पहुँचा सके ?
दिल है
पर कहाँ है जिगरा
जो सच की मार खा सके !

यों सब
जो आये
कुछ न कुछ
कह गये :
हम
अचकचाये
रह गये।

अभागे, गा !

मरता है ?
जिस का पता नहीं
उस से डरता है ?
—गा !

जीता है ?
आस-पास सब कुछ इतना भरा-पुरा है
और बीच में तू रीता है ?
—गा !

दुःख से स्वर टूटता है ?
छन्द सधता नहीं,
धीरज छूटता है ?
—गा !

याकि सुख से ही बोलती बन्द है ?
रोम सिहरे हैं, मन निःस्पन्द है ?
—फिर भी गा !
अभागे, गा !

कौन-सी लाचारी

कौन-सी लाचारी से नाल पर
खिली यह कली
फूलदान में—
मूल से कटी हुई ?

वही क्या हम में नहीं हैं
जो काल के डंठल पर
खिल रहे हैं
अनादि कूल से कटे ?

कैसा है यह ज़माना

कैसा है यह ज़माना
कि लोग
इसे भी प्यार की कविता
मानेंगे !

पर कैसा है यह ज़माना
कि हमीं
ऐसी ही कविता में
अपना प्यार
पहचानेंगे !

एक दिन यह राह

एक दिन यह राह पकड़ूँगा
सदा यह जानता था। पर
अभी कल भी मुझे सूझा नहीं था
कि वह दिन
आज होगा!

नशे में सपना

नशे में सपना देखता मैं
सपने में देखता हूँ
नशे में सपना देखने वाले को
सपने में देखता हुआ
नशे में डगमग सागर की उमड़न।

इतने गहरे नशों में
इतने गहरे सपनों में
इतने गहरे नशे में
सागर इतना गहरा, विराट्।
देखने वाला मैं इतना छिछला, अकिंचन।

इतना बहुत नशा
इतने बहुत सपने
इतना बहुत सागर
इतना
कम
मैं।

भले आये

राम जी
भले आये—
ऐसे ही
आँधी की ओट में
चले आये
बिन बुलाये।

आये, पधारो।
सिर-आंखों पर।
बन्दना सकारो।

ऐसे ही एक दिन
डोलता हुआ आ धमकूँगा मैं
तुम्हारे दरबार में :
औचक क्या ले सकोगे
अपनी करुणा के पसार में ?

सागर-मुद्रा

आकाश
बदलाया
धूमायित
भवें कसता हुआ
झुक आया ।

सागर सिहरा
सिमटा
अपनी ही सत्ता के भार से
सत्त्वमान
प्रतिच्छायित
भीतर को खिंच आया ।

फिर सूरज निकला
रुपहली मेघ-जाली से छनती हुई
धूप-किरनें
लहरियों पर मचलती हुई विछलती हुई
इठलायीं ।

तब फिर
वह मानो सिमट गयी

अपने भीतर को : दीठ खोयी-सी
सत्ता निजता भूली, सोयी-सी ।
लून लदी भीजी बयार में
मेरी आँखें कसमसायीं,
मैंने हाथ उठाया—कि मेरे अनजाने
उस के केशों के धूप-मँजे सोने का
गीला जाल
मेरे चारों ओर
सहसा कस आया ।

२

सागर की लहरों के बीच से वह
बाँहें बढ़ाये हुए
मेरी ओर दौड़ती हुई आती हुई
पुकारती हुई बोली :
'तुम—तुम सागर क्यों नहीं हो ?'
मेरी आँखों में जो प्रश्न उभर आया,
अपनी फहरती लटों के बीच से वह
पलकें उठाये हुए
उसे न नकारती हुई पर अपने उत्तर से
मानो मुझे फिर से ललकारती हुई
अपने में सिमटती हुई बोली :
'देखो न, सागर बड़ा है, चौड़ा है,
जहाँ तक दीठ जाती है फैला है,
मुझे घेरता है, धरता है, सहता है, धारता है, भरता है,
लहरों से सहलाता है, दुलराता है, झुमाता-झुलाता है,
और फिर भी निर्बन्ध मुक्त रखता है, मुक्त करता है—
मुक्त, मुक्त, मुक्त करता है !'

मैं जवाब के लिए कुछ शब्द जुटा सकूँ—
सँवार सकूँ,
या वह न बने तो
राग-बन्धों का ही न्योछावर लुटा सकूँ—

इस से पहले ही वह फिर
हँसती हुई मुड़ती हुई दोलती हुई उड़ती हुई
सागर की लहरों के बीच
पहुँच गयी।

३

रेती में
चार टूटी पर सँवारी हुई सीपियाँ,
एक ढहा हुआ
बालू का धरहरा
खारे पानी से मँजी हुई चैली का दंड
जिस पर
नारंगी के छिलके की
कतरन का फरहरा।
जहाँ-तहाँ बच्चों की पैर-छाप की कैरियाँ।

खाली बोतलें
दो अदद,
दफ़्ती की तश्तरियाँ—फ़कत तीन;
कुछ टुकड़े रोटी के,
पनीर के,
कुछ टमाटर के छिलके,
गुड़ी-मुड़ी कागज़,
बालू में अध-दबी पन्नी
कुछ रुपहली, कुछ रंगीन;
जहाँ-तहाँ आस-पास
कागज़ के कुचले हुए गिलास।

बार-बार हम आते हैं
और रेती मे लिख जाते हैं
अपने सुख-चैन की कहानी :
प्यार मे दिये हुए वचन,
या निहोरे पर किये हुए सैर के इरादे।
बार-बार रेती पर
हँसियाँ, किलकारियाँ,
कुनबे, फ़ुरसत,
उत्सव-जयन्तियाँ, सगाइयाँ,
दोस्तियाँ-यारियाँ, दुनियादारियाँ।
बार-बार रेती को
साँचे में भरते है;
रेती मे अपना निजी
कचरा मिलाते है,
छाप छोड़ चले जाते हैं।

जिसे बार-बार
सागर धोता है,
आँधी माँजती है,
लहरें लीपती हैं, सूरज सुखाता है,
समीरण सँवार कर
कही बह जाता है।
और फिर सागर रह जाता है।
तरंग-अंगुलियों पर गिनता
मानव के अद्‌भुत उद्यम, सनकी सपने,
स्वैरचारिणी चिन्ता।

४

सागर पर
उदास एक छाया घिरती रही,
मेरे मन में वही एक प्यास तिरती रही
लहर पर लहर पर लहर :
कहीं राह कोई दीखी नहीं,
बीत गया पहर,
फिर दीठ वहीं ठहर गयी
जहाँ गाँठ थी। जो खोलनी ही तो
हम ने चाही नहीं, सीखी नहीं !
छा गया अँधेरा फिर : जल थिर, समीर थिर;
ललक, जो धुँधला गयी थी, चिनगियाँ बिकिरती रही···

५

कुहरा उमड आया
हम उस मे खो गये
सागर अनदेखा
गरजता रहा।

फिर हम उमड़े
सागर अनसुना
बरजता रहा,
कुहरा हम में खो गया।

सब कुछ हम में खो गया,
हम भी
हम मे खो गये।

सागर
कुहरा
हम
कुहरा
सागर
शं···

६

सागर के किनारे
हम सीपियाँ-पत्थर बटोरते रहे,
सागर उन्हें बार-बार
लहर से डुलाता रहा, धोता रहा।

फिर एक बड़ी तरंग आयी
सीपियाँ कुछ तोड़ गयी,
कुछ रेत में दबा गयी,
पत्थर पछाड़ के साथ बह गये।
हम अपने गीले पहुँचे निचोड़ते रह गये,
मन रोता रहा।

फिर, देर के बाद हम ने कहा : पर रोना क्यों ?
हम ने क्या सागर को इतना कुछ नहीं दिया ?
भोर, साँझ, सूरज-चाँद के उदय-अस्त,
शुक्र तारे की थिर और स्वाती की कँपती जगमगाहट,
दूर की बिजली की चदरीली चाँदनी,
उमस, उदासियाँ, धुन्ध,
लहरों में से सनसनाती जाती आँधी—
काजल-पुती रात में नाव के साथ-साथ
सारे संसार की डगमगाहट :
यह सब क्या हम ने नहीं दिया ?

लम्बी यात्रा में
गाँव-घर की यादें,
सरसों का फूलना,
हिरनों की कूद, छिन चपल छिन अधर में टँकी-सी,
चीलों की उड़ान, चिरौटों-कौओं की ढिठाइयाँ,
सारसों की ध्यान-मुद्रा, बदलाये ताल के सीसे पर अँकी-सी,
वन-तुलसी की तीखी गन्ध,
ताज़े लीपे आँगनों में गोयठों पर
देर तक गरमाये गये दूध की धुईली बास,
जेठ की गोधूली की घुटन में कोयल की कूक,
मेड़ों पर चली जाती छायाएँ,
खेतों से लौटती भटकती हुई तानें,
गोचर में खंजनों की दौड़,
पीपल-तले छोटे दिवले की
    मनौती-सी ही डरी-सहमी लौ—
ये सब भी क्या हम ने नहीं दी ?

जो भी पाया, दिया :
देखा, दिया :
आशाएँ, अहंकार, विनतियाँ, बड़बोलियाँ,
ईर्ष्याएँ, प्यार, दर्द, भूलें, अकुलाहटें,
सभी तो दिये :
जो भोगा, दिया; जो नहीं भोगा, वह भी दिया;
जो सँजोया, दिया,
जो खोया, दिया।
इतना ही तो बाकी था कि कह सकें :
जो बताया वह भी दिया ?

कि अपने को देख सकें,
अपने से अलग हो कर
अपनी इयत्ता माप सकें
—और सह सकें ?

७

वहां
एक चट्टान है
सागर उमड़ कर उस से टकराता है
पछाड़ खाता है
लौट जाता है
फिर नया ज्वार भरता है
सागर फिर आता है।

न कहीं अन्त है
न कोई समाधान है
न जीत है न हार है
केवल परस्परता के तनावों का
एक अविराम व्यापार है
और इस में
हमें एक भव्यता का बोध है
एक तृप्ति है, अहं की तुष्टि है, विस्तार है :
विराट् सौन्दर्य की पहचान है।

और यहां
यह तुम हो
यह मेरी वासना है

आवेग निर्व्यतिरेक
निरन्तराल···
खोज का एक अन्तहीन संग्राम :
यही क्या प्यार है ?

१०

हाँ,
लेकिन तुम्हारा अविराम आन्दोलन
शान्ति है, ध्रुव आस्था है,
सनातन की नमस्कार है;
जब कि धरती की एकान्त निरन्तर
जड़ता

९

क्षितिज जहाँ उद्भिज है,
एक छाया-नाव
सरकती चली जाती है परिभाषा की रेखा-सी।
और फिर क्षिति और सागर मिल जाते हैं
शब्दों से परे एक नाद में :
संवेदन से परे एक संवाद में।
कहाँ, कौन किस से अलग है, जब कि मैं
पूछता हुआ भी, प्रश्न में खो जाता हूँ,
गगन की उदधि की चेतना की इकाई में ?

१०

हाँ,
लेकिन तुम्हारा अविराम आन्दोलन
शान्ति है, ध्रुव आस्था है,
सनातन की ललकार है;
जब कि धरती की एकरूप निश्चलता
जड़ता
में उस सब का निरन्तर हाहाकार है
जो मर जायेगा,
जो बिना कुछ पाये, बिना जाने
अपने को बिना पहचाने
बिखर जायेगा !

११

सोच की नावों पर
चले गये हम दूर कहीं;
किनारे के दिये
झलमलाने लगे।

फिर, वहाँ कहीं, खुले समुद्र में
हम जागे। तो दूर नहीं
थी दूर उतनी : चले ही अलग-अलग
हम आये थे। लाये थे।
अलग-अलग माँगें।

तब, वहाँ, सुनहली तरंगों पर
हचकोले हम खाने लगे।

ओह, एक ही समुद्र पर
एक ही समीर से सिहरते
कौन एक राग ही
हमारे हिये गाने लगे!

बड़े शहर का एक साक्षात्कार

अधर में लटका हुआ
भारी ठोस कन्था।
कसैले भूरे कोहरे में
झिपती-दिपती
प्रकाश की अनगिन थिगलियाँ।

कि कोहरे को थर्राती हुई
एक भर्राती हुई आवाज़ बोली :
    उस कन्थे की एक थिगली
    मेरा घर है। जानते हो न ?
    उस में मेरी घरवाली है।
    अगर मैं इतनी पिये हुए न होता
    तो पहचान देता।
    मानते हो न ?

मैंने कहना चाहा : किसे ?
घर को, या घरवाली को ?
पर कह न सका : चुपचाप ही
उस के भाग्य को सराहा
जो भुला देता है
और याद रखता है भूल गये होने को
जो, यों, सस्ते में दोहरा सुख लेता है !

लेकिन वह अपने-आप ही
रह न सका; बोला :
पर पिये न होता
तो घर तो पहचान देता
मगर अपने-आप को नहीं पहचान ।।।।
मैं हूँ, मैं कौन हूँ, मैं मैं हूँ,
यही कैसे जान पाता ?
फिर क्या होता ?
तुम्हीं कहो, फिर क्या होता ?

उसे रट लग जायेगी—
वह तो झोंक में है, मेरी शामत आयेगी ! —
यह सोच कर मैंने कहा :
नहीं दोस्त ! तुम सब पहचानते हो,
तब भी पहचानते;
भला अपना घर न जानते ?

नशे की खुशी में उस ने दोहराया,
हाँ, सब पहचानता हूँ !
घर को, घरवाली को,
हर थिगली को—खूब जानता हूँ !
फिर एकाएक उसे क्रोध हो आया :
नहीं, तुम कुछ नहीं जानते !
उस कन्थे में सत्ताईस सौ थिगलियाँ हैं—
सत्ताईस सौ दरवे हैं—
हर थिगली में एक घर है, एक घरवाली है—
सत्ताईस सौ कुनबे हैं ! —
कोई कैसे पहचान देगा ?
तुम झूठे हो, तुम कभी नहीं पहचानते !

उन सत्ताईस सौ थिगलियों में कौन-सी
मेरा घर है,
कोई कैसे जान सकता ?
मैं भी कैसे पहचान सकता ?
होश में भी पहचान सकता तो पहले पीना क्यों ?
बताओ, मैं पीता क्यों ?

कोहरे को थर्राती हुई
भर्राती हुई आवाज़ :
अधर में लटका हुआ
एक सवाल
और एक कन्या
दोनों झिरझिरे, दिपते-झिपते।
क्या सवालों की थिगलियों के पीछे भी
जलती हुई बत्तियाँ हैं
या सिर्फ अधर से लटकन ?

जन्म-शती

उसे मरे
वरस हो गये हैं।
दस—या वारह, अठारह, उन्नीस—
या हो सकता है बीस ?—
मेरे जीवन-काल की वात है—
अभी तो मुझे कल जैसी याद है।

कैसे मरे ?
कुछ का खयाल है कि मरे नहीं, किसी ने मारा।
कुछ कहते हैं, लम्वी वीमारी थी।
कुछ कि मामला डाक्टरों ने विगाड़ा।
कुछ कि अजी, डाक्टरों को शह थी।
राजनीति में क्या नहीं चलता ?
कुछ सयाने—कि भावी कभी नहीं टलता।
मौत आती है तो मरते हैं; रहता नहीं चारा।
कुछ और फ़रमाते हैं : अब छोड़ो जो मर गया।
जो ज़िन्दा हैं उन की सोचो; वह तो तर गया।

मर जाने के वाद
किस ने क्या किया था कौन जानता है ?
कोई श्रद्धा से कहता है, वड़े काम किये;
कोई अवज्ञा से—कौन मानता है !

कोई सुझाता है : मौका ऐसा था कि बन गये नेता ।
आज होते तो कोई ध्यान नहीं देता ।
कोई इतिहास-पुरुष कहता है, कोई पाखंडी,
कोई अवतार ।
कोई अन्धों के देश का काना सरदार ।
लगा ही रहता है वाद-विवाद ।

पर एक बात तो मानी हुई है—
ऐतिहासिक तथ्य है, सब को ज्ञात है—
कि उन्हें जन्मे ठीक सौ बरस होने आते हैं ।
और इस लिए हम उन की जन्म-शती मनाते हैं ।
इस में हम सब साथ हैं ।

मुझे आज हँसना चाहिए

एक दिन मैं
राह के किनारे मरा पड़ा पाया जाऊँगा
तब मुड़-मुड़ कर साधिकार लोग पूछेंगे :
हमें पहले क्यों नहीं बताया गया
कि इस में जान है ?
पर तब देर हो चुकी होगी।
तब मैं हँस न सकूँगा।
इस बात को ले कर
मुझे आज हँसना चाहिए।

इतिहास का काम
इतने से सध जायगा कि
एक था जो—था,
अब नहीं है—पाया गया।
पर जो मैं जिया, जो मैं जिया,
जो रोया-हँसा,
जो मैंने पाया, जो किया,
उस का क्या होगा ?
उस के लिए भी है एक नाम :
'आया-गया'
इस नाम को ले कर
मुझे आज हँसना चाहिए।

मेरे जसे करोड़ों हैं
जिन से इतिहास का काम
इसी तरह सधता है :
कि वे—नहीं हैं।
उन का सुख-दुख, पाना-खोना
अर्थ नहीं रखता, केवल होना
—या अन्ततः न होना।
वे नहीं जानते इतिहास, या अर्थ;
वे हँसते हैं। और लेते हैं
भगवान् का नाम।
इस बात को ले कर
मुझे आज हँसना चाहिए।

इसी लिए तो
जिन का इतिहास होता है
उन के देवता हँसते हुए नहीं होते :
कैसे हँस सकते?
और जिन के देवता हँसते हुए होते हैं
उन का इतिहास नहीं होता :
कैसे हो सकता?
इसी बात को ले कर
मुझे आज हँसना चाहिए…

गजर

गजर
बजता है
और स्वर की समकेन्द्र लहरियाँ
फैल जाती हैं
काल के अछोर क्षितिजों तक।

तुम :
जिस पर मेरी टकराहट :
इस वर्त्तमान की अनुभूति से
फैलता हुआ हमारे भोग का वृत्त
अतीत और भविष्यत्
काल के अछोर क्षितिजों तक।

काल-स्थिति : १

जिस अतीत को मैं भूल गया हूँ वह
अतीत नहीं है क्योंकि वह
वर्तमान अतीत नहीं है।

जिस भविष्य से मुझे कोई अपेक्षा नहीं वह
भविष्य नहीं है क्योंकि वह
वर्त्तमान भविष्य नहीं है।

स्मृतिहीन, अपेक्षाहीन वर्तमान—
ऐसा वर्त्तमान क्या वर्त्तमान है—
वही क्या है?

काल-स्थिति : २

लेकिन हम जिन की अपेक्षाएँ
अतीत पर केन्द्रित हो गयी हैं,
और भविष्य ही जिन की मुख्य स्मृति हो गयी है
क्योंकि हम न जाने कब से भविष्य में जी रहे हैं—
हमारा क्या ?
क्या इस लिए हमारा वर्त्तमान
वही नहीं है जो नहीं है ?

•

कातिक की रात

घनी रात के सपने
अपने में दुहराने को
मुझे अकेले
न जगा !

कृत्तिकाओं के
ओस-नमे चमकने को
तकने
मुझे अकेले
न जगा !

तकिये का दूर छोर
टोहने
इतनी भोर मे
मुझे अकेले
न जगा !

सोया हूँ ? मूर्छित हूँ !
पर अन्धे कोहरे में
बिछोहने
न जगा, न जगा, न जगा !

कविता की बात

नहीं, मैं अपनी बात नहीं कहता।
यह नहीं कि वह मुझे कहनी नहीं है
पर वह जिसे भी कही जायेगी
अनकहे कही जायेगी
और जब तक उसे और उसे मात्र कह न पायेगी
अनकही रह जायेगी।

तुम से मैं कहता हूँ
तुम्हारी ही बात
जैसा कि तुम सुन कर ही जानोगे :
सुनते ही बार-बार पहलू-दर-पहलू, कटाव-दर-कटाव
तुम्हारे ही लाख-लाख प्रतिबिम्बों में कही जाती
लाख-लाख स्वर-धाराओं में अविराम वही आती
तुम्हारी ही बात पहचानोगे।
या फिर पाओगे
कि वह तुम्हारी से भी आगे
सब की बात है, ऐसी सब की
कि किसी की नहीं है,
कहीं की नहीं है, कभी की नहीं है
पर अपनी और अपने-आप में स्वायत्त, स्वतःप्रमाण होने के नाते
ठीक यहीं की है और ठीक अब की है।

कविता तो
ऐसी ही वात होती है।
नहीं तो लयवद्ध वहुत-सी खुराफ़ात होती है।
ऐसी ही वात
दिल फोड कर रहस्य मे आती है
भीतर का जलता प्रकाश वाहर लाती है :
स्वयं फिर नहीं दीखती, और मव-कुछ दिखाती है,
उसी सव मे कहीं
कवि को भी साथ ले कर
लय हो जाती है।

देलोस से एक नाव

देलोस से एक नाव

दाडिम की ओट हो जा, लडकी !
भोर-किरणों की ओट
देलोम की ओर से
एक नाव आ रही है !
क्या जाने, भोर-पछियों के शोर के साथ
खित्तारे के स्वर भी उमडते हुए आने लगें !
मैंने तो इसी लिए अजीर की ओट ली है
और वंशी बजा रहा हूँ :
दाडिम की ओट हो जा, लड़की !
और सुन, तुझे बुला रहा हूँ !

देलोस : एजियन सागर (पूर्वी भूमध्य सागर) के किक्लदीस (साइक्लैडीज) द्वीप-समूह का सब से छोटा द्वीप। अपोलो का जन्म यहीं हुआ था, यहीं उस की पूजा का प्रधान केन्द्र था।

कहाँ

मन्दिर में
मैंने एक बिलौटा देखा :
चपल थी उस की आँखें
और विस्मय-भरी
उस की चितवन;
और उस का रोमिल स्पर्श
न्योतता था
सिहरते अनजान खेलों के लिए
जिन का आश्वासन था उस के
लोचीले बिजली-भरे तन में !

बाहर
यह एक अजनबी नारी है :
आँखों में स्तम्भित, निषेधता अँधेरा,
बदन पर एक दूरी का ठंडा ओप !

भद्रे, तुम ने मेरा बिलौटा
कहाँ छिपा दिया ?

शहतूत

वापी में तूने
कुचले हुए शहतूत क्यों फेंके, लड़की ?
क्या तूने चुराये—
पराये शहतूत यहाँ खाये हैं ?

क्यों नही बताती ?
अच्छा, अगर नही भी खाये
तो आँख क्यों नही मिलाती ?

और तूने यह गाल पर क्या लगाया ?
ओह, तो क्या शहतूत इसी लिए चुराये—
सच नही खाये ?

शहतूत तो जरूर चुराये, अब आख न चुरा !
नही तो देख, शहतूत के रस की रंगत से
मेरे ओठ सँवला जायेंगे
तो लोग चोरी मुझे लगायेंगे
और कहेंगे कि तुझे भी चोरी के गुर मैंने सिखाये हैं !
तब, लड़की, हम किसे क्या बतायेंगे ?
कैसे समझायेंगे ?

अच्छा, आ, वापी की जगत पर बैठ कर यही सोचें।
लड़की, तू क्यों नहीं आती ?

दो जोड़ी आँखें

म्निमोसिनी, मुझे नींद दे !
क्यों रात-भर
दो जोड़ी आँखें मुझे सताती हैं !

एक जोड़ी
पूरे चेहरे में जड़ी है
पर कितनी बर्फीली ठंडी
है उस की चितवन !

और दूसरी
सुलगती है, दिपती है
पर कोई चेहरा
उस के पीछे रूप नहीं लेता

रात-भर। रात-भर
दो जोड़ी आँखें मुझे सताती हैं।

म्निमोसिनी : स्मृति की देवी

डगर पर

नागरों की नगरी में
देवताओं में होड़ होती होगी।
मेरे ग्राम का कोई नाम नहीं,
तेरे का होगा, मुझे उस से काम नहीं।
यह मेरा घोड़ा है, लदा है माल—
जालिया की डाल, फल :
चखोगी—लोगी ?
या कि घोड़े की दुलकी देखोगी—
ओलिम्पिया चलोगी ?

देखता—अगर देखता

प्रेक्षागृह की मुँडेर पर बैठ मैंने
उसे बार रंगपीठ की ओर जाते हुए देखा था,
यद्यपि वह नटी नहीं थी,
और नाटक-मंडली अपना खेल दिखा कर
कब की चली जा चुकी थी :
मंडली के आर्फ़िउस की वंशी
वहाँ फिर सुनाई नहीं देगी।

और अगर मैं घाटी के छोर पर बैठ कर देखता
तो मैं उसे बार-बार तलैटी की ओर जाते हुए देखा करता,
यद्यपि वह न सूरमा थी
न सेना की पिछलगू,
और वीरों की टोलियाँ कब की घाटी से उतर कर
खाड़ी के पार चली जा चुकी हैं :
जहाँ से लौटती हुई कारिंथोस के विजेता की हुंकार की गूँज
अब घाटी को नहीं थरथरायेगी।

पर अगर मैं जालिपा के इस उजाड़ वन के किनारे बैठ
उसे ताका करता
जिस में अब न पुजारियों की सीठी पदचाप है
न तीर्थयात्रियों की बेकल चहल-पहल,
तो इस की बलखाती पगडंडियों पर

वह न दीखती :
और मैं जानता रहता कि वहाँ
और उस से आगे, अधिक घने कुंजों में
और उस से आगे, जहाँ छिपे सोते का पानी वापी में सँचता है—

सर्वत्र एक अँधियारा सन्नाटा है,
आलिवा की सैकड़ों वर्षों में मरोड़ी हुई डालें हैं
और मेरी एकटक आँखें जिन में
        उस की अनुपस्थिति सनसनाती है !

अलस्योनी

अपने सेईख के लिए पुकार मत कर, अलस्योनी !
तेरी पुकार से सागर की लहरें थम जायेंगी !
और तब ? सूरज उगेगा, तारे चमकेंगे,
कर्णधार अपने पथ पहचानते रहेंगे—
पर कितने द्वीपों में कितनी विरहिनियाँ सहम जायेंगी !

सागर कुछ रखता नहीं :
कुछ बदल देता है,
कुछ बाँट-बिखेर देता है,
और कुछ (सदा उपेक्षा से नहीं,
  कभी करुणा से भी)
किनारे की सिकता को फेर देता है।

कहाँ है सेईख ? उसी का स्वर तो
हवाओं में गाता था !
कितनी चट्टानों की कितनी खोहों-कन्दराओं से
कितनी स्वर-लहरियाँ उपजाता था !
तुम उसे न पुकारो, अलस्योनी,
हवाएँ ही उसे टेरेंगी, खोज लायेंगी :
हर कन्दरा में गुहारेंगी
सागर की हर कोख को बुहारेंगी
और जब पायेंगी

घेरेंगी
और भोर की लजीली ललाई में
तुम तक पहुंचा जायेंगी !

पुकार मत करो, अलस्योनी !
सागर की लहरें ठिठक जायेंगी
और तुम्हारी-सी अनगिन विरहिनियाँ
राह देखती थक जायेंगी
कि यह कैसी हुई अनहोनी ।

भोर में
पुकार मत करो, अलस्योनी !

प्रतिद्वन्द्वी कवि से

बन्धु ! तेजपात की दो डालें पाने के लिए
तुम इतने उतावले होगे ?

दाफ़्नी को बावले प्रार्थी से बचाने के लिए
देवता ने उस की छरहरी देहलता को
तेजपात की झाड़ी में बदल दिया था :
अब तेजपात की डाली को
तुम्हारी आतुरता के संकट से छुड़ाने के लिए
उस ने कहीं दाफ़्नी में बदल दिया—तो ?

हम—हमारा तो क्या, हमारा गाँव
एक रूपसी युवती से सम्पन्नतर हो जायेगा—
पर तुम क्या करोगे ?
तुम्हारे हाथ क्या आयेगा ?

बाला—तुम्हें भला उस की दरकार क्या ?
या उसे तुम से सरोकार क्या ?
और डाल तेजपात की—
तेज ही न रहा तो क्या बात पात की !

दाफ़्नी : तेजपात; अपोलो का प्रिय वृक्ष होने के नाते चक्रवर्ती कवि को इस के पत्तों का किरीट पहनाया जाता था ।

विषय : प्यार

यहाँ
हेलास के द्वीपों में
हम अपनी वहुओं को प्यार करते हैं
और चाहते हैं कि वे
जैसी हैं उस से कुछ दूसरी होतीं ।

वहाँ गिप्त में
वे वेश्याओं को प्यार नहीं करते
पर चाहते हैं कि वे
जैसी हैं वैसी ही रहें,
वैसी ही रहें !

हेलास : ग्रीक द्वीप-समूह
गिप्त : ईजिप्ट, मिस्र

अरियोन

कितनी धुनें
मैंने सुनी हैं
कितने बजैयों से
और गीत मैंने सुने हैं
कितने गवैयों से
जिन से कुंजबेलों की पत्तियाँ कँपने लगीं,
या कि वन-झरने की लहरें ठिठक गयीं ?

यही एक तान
कभी नहीं सुनी
ऐसा गान कभी
सुनने में नहीं आया--
ऐसा तुम ने क्या गाया
कवि, यह गीत पहले क्यों नहीं सुनाया
जिस से कि मेरी आँखें झँपने लगीं,
मेरी क्वारी जाँघें फड़क गयीं ?

ई० पू० सातवीं शती के खित्तारा-वादक महाकवि अरियोन के वादन से पशु-पक्षी जल-जन्तु तक मुग्ध हो जाते थे।

कस्तालिया का झरना

चिनारों की ओट से
सुरमुराता सरकता
झरने का पानी।
अरे जा! चुप नहीं रहा जाता तो
चाहे जिस से कह दे, जा,
सारी कहानी।
पतझर ने कब की ढँक दी है
धरा की गोद-सी वह ढाल, जहाँ
हम ने की थी मनमानी।

कस्तालिया : पार्नेसस पर्वत की दक्षिणी उपत्यका में देल्फ़ी के निकट एक झरना, जो अपोलो और काव्य-देवताओं का तीर्थ माना जाता था।

जीवन-यात्रा

अधोलोक में ? चलो, वहीं जाना होगा तो वहीं सही।
जितनी तेज चलेंगे, यह राह बचेगी उतनी थोड़ी।
जो विलमते, पड़ाव करते पैदल जायेंगे जायें—
हम-तुम क्यों न कर लें सवारी के लिए घोड़ी ?

ग्रीक विश्वास के अनुसार पाताल-लोक या अधोलोक प्रेत-लोक था; मृत्यु के बाद 'छायाएँ' यहीं वास करती थी।

नरक की समस्या

नरक ? ख़ैर और तो जो है सो है,
जैसे जिये, उस से वहाँ कोई ख़ास कष्ट नहीं होगा ।
पर एक बात है : जिस से जिस से यहाँ बचना चाहा
वह-वह भी वहीं होगा !

समाधि-लेख

मैं बहुत ऊपर उठा था, पर गिरा।
नीचे अन्धकार है—बहुत गहरा
पर बन्धु ! पढ़ चुके तो बढ़ जाओ, रुको मत :
मेरे पास—या लोक में ही—कोई अधिक नहीं ठहरा !

मिरिना की ताँतिन

यह मेरा ताना
यह मेरा बाना
गहरे में छिपा कर
मैंने फूल का नाम चुन लिया
उसी पर—बदल-बदल रंगों को—बूटी बुनी।

पर यह जो उभरता आता है
मुझे चौंकाता है :
यह तो किसी दूसरे ताँती ने आ कर
किसी दूसरे करघे पर बुन दिया !
कौन है वह निर्मोही गुनी !

मिरिना : भूमध्य सागर के पूर्वी तट की एक प्राचीन नगरी थी।

तो तू सागर से बनी थी

तो तू सागर से बनी थी
(जलजा कीप्रिया की परछाईं) !
एक दिन शान्त, सोहनी, सुहासिनी,
धूप-सुनहली, चाँदनी-रुपहली,
नाविक की मनमोहनी --
एक दिन वरुण की बाज-लदी कोहनी,
आँधी विनाशिनी !

रूप और प्रेम की देवी अफ्रोदाइती सागर-फेन से सहज उद्‌भूत हुई थी। कीप्रस (साइप्रस) में उस का मुख्य मन्दिर था, इस लिए वह कीप्रिस या कीप्रिया भी कहलाती थी।

ग्रीक सागर-देवता पोसेइदोन् (=वरुण) वज्र-त्रिशूल धारण करता है; आँधियाँ-बिजलियाँ उसी के अधीन हैं।

◇ ◇ ◇